भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान पर आक्रमण और विध्वंस

बर्बरों को नहीं चाहिए इतिहास!

• कात्यायनी

यूनानी महाकवि **कोंस्तांतिन कवाफ़ी** की सुप्रसिद्ध कविता *'बर्बरों का इंतज़ार में'*, नगर के सभी भद्र नागरिक अपने राजा और सभासद के साथ नगर द्वार पर एकत्र होकर बेकली से बर्बरों का इन्तजार कर रहे हैं। अन्त में बर्बरों के नहीं आने से वे काफी चिन्तित होते हैं :

"और अब क्या होगा
हमारा बर्बरों के बगैर?
वे किसी तरह का
समाधान तो थे।"

एक विकल्पहीन, ठहरावग्रस्त, संकटग्रस्त व्यवस्था अन्ततोगत्वा बर्बरता में ही अपनी सारी समस्याओं का समाधान देखती है। यह बात कवाफ़ी के देशकाल से अधिक हमारे देशकाल पर लागू होती है। पूँजीवाद अपने तमाम संकटों का समाधान ढूँढते हुए एक बार फिर फासीवादी बर्बरता तक जा पहुँचा है।

कवाफ़ी की कविता की तरह हमारे देश के भद्रजनों को आज यह चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है कि यदि बर्बर नहीं आये तो क्या होगा! बर्बर यहाँ आ चुके हैं। राज्य और पूँजीवादी जनवाद की सभी संस्थाओं पर वे काबिज हैं और लगातार समस्याओं का "फासीवादी" समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं। बाबरी मस्जिद के ध्वंस से लेकर गुजरात-2002 तक लगातार दंगों-नरसंहारों का सिलसिला जारी है। इसके साथ ही वे लगातार इतिहास की जगह मिथ्या इतिहास और मिथकों को स्थापित कर रहे हैं, विज्ञान और तर्कणा की जगह धार्मिक अंधविश्वास एवं नस्ली-धार्मिक-जातीय श्रेष्ठता की छद्म मान्यताओं को तथा बुर्जुआ जनवाद की जगह निरंकुश असहिष्णुता को स्थापित कर रहे हैं। इतिहास की पाठ्यफस्तकों और आई.सी.एच.आर. जैसी संस्थाओं को निशाना बनाना तथा पाठ्यक्रमों के फासिस्टीकरण की महत्वाकांक्षी 'जोशी-परियोजना' इसी सिलसिले की कड़ियाँ हैं। कलाकृतियों को नष्ट करना, फिल्मों के निर्माण एवं प्रदर्शन को रोक देना–यह सब कुछ कोई पहली बार नहीं हो रहा है। विहिप, बजरंग दल, और संभाजी ब्रिगेड जैसे संगठन जो कर रहे हैं, वह हिटलर के नात्सी दस्ते और 'कू-क्लक्स-क्लान' जैसे गिरोह पहले भी कर चुके हैं।

इस वर्ष जनवरी के महीने में फणे स्थित **भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान** पर बाल ठाकरे की शिवसेना से सम्बद्ध मराठा सेवा संघ की संभाजी ब्रिगेड ने हमला करके जो तोड़फोड़ और विनाश किया, वह पिछले पन्द्रह वर्षों से जारी उग्र कट्टरपंथी गतिविधियों की सबसे ताजा कड़ी है। इतिहास और संस्कृति पर किये गये हाल के हमलों में यह सबसे बर्बर है, जिसकी भरपाई लगभग नामुमकिन है। इतिहास पर यह हमला इतिहास-बोध पर हमला है। बिना वैज्ञानिक इतिहास-बोध के भविष्य-निर्माण नहीं किया जा सकता। इसलिए यह हमला वस्तुतः भविष्य पर एक फासिस्ट हमला है।

भण्डारकर संस्थान की स्थापना 1917 में रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की याद में हुई थी। 1920 में तत्कालीन मुंबई प्रशासन ने बीस हजार दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रह इस संस्थान को सौंप दिया था। संस्थान के पास अमूल्य पुरानी पुस्तकों, कलात्मक वस्तुओं, पाण्डुलिपियों और अभिलेखों की विराट सम्पदा थी। प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्येता पूरी दुनिया से स्रोत-सामग्री की तलाश में भण्डारकर संस्थान आते रहे हैं और शोध-कार्य करते रहे हैं।

विगत सात जनवरी को सम्भाजी ब्रिगेड के कार्यकर्ताओं ने संस्थान में घुसकर जबर्दस्त तोड़फोड़ की। कुल 18 हजार पुस्तकों और 30 हजार दुर्लभ पाण्डुलिपियों को या तो उन्होंने चुरा लिया या नष्ट कर दिया। कई पुरानी मूर्तियों और चित्रों की भी उन्होंने यही दुर्गति की। इसके पहले 22 सितम्बर 2003 को पुणे के शिवसेना प्रमुख रामभाउ पारेख के नेतृत्व में शिवसैनिकों ने वयोवृद्ध संस्कृत विद्वान और इतिहासकार **श्रीकान्त बहुलकर** पर हमला किया और उनके मुँह पर कालिख पोत दी।

इन सारी घटनाओं की पृष्ठभूमि में अमेरिकी इतिहासकार **जेम्स लेन** की पुस्तक *'शिवाजी : इस्लामी भारत में एक हिन्दू राजा'* (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) थी, जिसमें लेखक ने ऐतिहासिक साक्ष्यों के

हवाले से एक स्थान पर शिवाजी के निजी एवं पारिवारिक जीवन के बारे में कुछ ऐसी बातें लिखी हैं, जो मराठा-अस्मिता और हिन्दू गौरव के नायक के रूप में शिवाजी को देखने वाले शिव सैनिकों को आपत्तिजनक प्रतीत हुईं। जेम्स लेन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में, सामग्री जुटाने व अध्ययन में सहयोग के लिए बहुलकर भण्डारकर संस्थान के लोगों के प्रति धन्यवाद-ज्ञापन किया था, महज इसी बात का खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा। चूँकि जेम्स लेन ने प्रख्यात मराठी साहित्यकार **दिलीप चित्रे** के प्रति भी सहयोग के लिए आभार-प्रदर्शन किया था, इसलिए उन्हें भी लगातार सम्भाजी ब्रिग्रेड और शिव सेना से धमकियाँ मिल रहीं हैं और वे फलिस-संरक्षण में अपने ही घर में क़ैद जैसी स्थिति में हैं। हाल ही में इस घटना पर दिलीप चित्रे ने *'नाजीवाद की आहटें'* शीर्षक से एक विक्षुब्ध टिप्पणी भी लिखी थी। दिलीप चित्रे या श्रीकान्त बहुलकर का जेम्स लेन की शिवाजी-विषयक स्थापनाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं है। उन्होंने कुछ मराठी और संस्कृत स्रोत-सामग्री के अध्ययन में उनकी सहायता मात्र की थी, जिसकी उन्हें क़ीमत चुकानी पड़ी।

''आहत भावनाओं'' की राजनीति या ''अस्मितावादी'' राजनीति की अकादमिक क्षेत्र में किस हद तक निरंकुश स्वेच्छाचारी परिणतियाँ हो सकती हैं–इसका एक प्रतिनिधि उदाहरण भण्डारकर संस्थान-विध्वंस काण्ड है। बात केवल भाजपा और शिवसेना के फासिस्ट गुण्डों की ही नहीं है। क्षेत्रीय और जातीय अस्मिता की राजनीति करने वाली सभी बुर्जुआ पार्टियों ने अपने-अपने इतिहास-पुरुष ढूँढकर उनका ऐसा महिमामण्डन किया है कि उनके विचारों और भूमिका के ऐतिहासिक वस्तुपरक मूल्यांकन को लगभग असंभव बना दिया गया है। वैचारिक मतभेदों का जवाब गाली, तोड़फोड़ और हमले से देना एक चिरपरिचित फासिस्ट फ़ितरत है, जिसका इस्तेमाल आज लगभग सभी बुर्जुआ पार्टियाँ कर रही हैं। ऐसी घटनाएँ आम् होती जा रही हैं और न केवल राजनीतिक बल्कि अकादमिक दायरों में भी कभी धार्मिक, कभी जातिगत तो कभी राष्ट्रीय अस्मिता को पहुँचाये गये आघात की ''प्रतिक्रिया'' को जायज़ ठहराने वाले लोगों की आज कमी नहीं है।

भण्डारकर संस्थान और श्रीकान्त बहुलकर पर हमले की घटना से क्षुब्ध इतिहासकार **गजानन मेहेंदेले** ने तीस वर्षों के श्रम से तैयार अपनी पुस्तक *''श्री राजा शिव छत्रपति''* की अप्रकाशित पाण्डुलिपि को यह कहते हुए फाड़ दिया कि *''मैं किसके लिए लिख रहा हूँ, यहाँ कोई इस प्रकार के लेखन को पढ़ने के काबिल नहीं है।''* लेकिन इस कड़वी सच्चाई को मेहेंदेले को भी मानना चाहिए कि निरंकुश वैचारिक असहिष्णुता के इस परिवेश के निर्माण में उन जैसे इतिहासकारों की भी भूमिका रही है। उल्लेखनीय है कि जून, 2003 में जेम्स लेन की फस्तक के तथाकथित आपत्तिजनक अंशों पर ध्यान जाने के बाद गजानन मेहेंदेले, निनाद बेडेकर, बाबूसाहब पुरंदरे और जयसिंहरवा पवार आदि इतिहासकारों ने प्रकाशक ओ.यू.पी. को पत्र लिखकर इस पुस्तक को बाज़ार से हटाने की माँग की थी। जाहिर है कि अपने कारोबारी हितों को देखते हुए ओ.यू.पी. ने ऐसा ही किया। बुनियादी सवाल इतिहासकारों द्वारा इस माँग के ही औचित्य का है। धार्मिक विषयों के अमेरिकी अध्येता जेम्स लेन की स्थापनाओं और उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों या उनके औचित्य पर किसी की भी असहमति या मतभेद हो सकते हैं। लेकिन शोध-अध्ययन के प्रति वैज्ञानिक प्रतिबद्धता का एकमात्र आग्रह यही हो सकता है कि उस फस्तक में प्रकट विचारों-स्थापनाओं की आलोचना की जाये, उन पर बहस चलायी जाये और सच्चाई सामने लाई जाये। एक इतिहासकार जब पुस्तक को बाजार से हटाने की या उसपर प्रतिबंध लगाने की बात करता है, यदि वह स्वयं ''आहत भावनाओं के तर्क'' का शिकार होता है तो उसे इस तर्क की परिणति को स्वीकारने के लिए भी तैयार रहना होगा। ''अस्मितावादी'' राजनीति एवं धार्मिक जातिगत ''आहत भावनाओं'' की आड़ लेकर अपना उल्लू सीधा करने वाली बुर्जुआ पार्टियाँ और राज्यसत्ता अन्ततोगत्वा ऐसे लोगों को अपने मोहरों के रूप में ही इस्तेमाल करती हैं।

ग़ौरतलब है कि शिवसैनिकों और भाजपाइयों की धार्मिक असहिष्णुता की आलोचना का दिखावा करने वाली कांग्रेस और राकांपा की, महाराष्ट्र में सत्तासीन गठबंधन सरकार ने, पुस्तक को प्रकाशक द्वारा बाजार से हटा लेने के बावजूद उस पर प्रतिबंध लगाकर अंध मराठा अहंवाद और हिन्दुत्व की भावनाओं को तुष्ट करने की कोशिश की। कांग्रेस और राकांपा बाला साहब ठाकरे की तरह मराठी अस्मिता की राजनीति मुखर रूप से भले न करती हों, लेकिन दोनों ही पार्टियों के मराठा क्षत्रपों को अपने मताधार की चिन्ता जरूर सता रही थी। महाराष्ट्र सरकार द्वारा फस्तक पर प्रतिबन्ध के पीछे मूलतः वही तर्क काम कर रहा है, जो कांग्रेस की 'नरम केसरिया लाइन' के पीछे काम करता रहा है।

कोई आश्चर्य नहीं कि मराठा सेवा संघ का सरगना महाराष्ट्र सरकार की सेवा में एक्जीक्यूटिव इंजीनियर है और अभी तक उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हुई है। बहुलकर के साथ दुर्व्यवहार करने वालों का सरदार रामभाउ पारेख भी छुट्टा घूम रहा है। भण्डारकर संस्थान में तोड़फोड़ करने वाले 72 लोग गिरफ्तार होकर जमानत पर छूट चुके हैं और देर-सबेर कानून भी उन्हें ''साक्ष्यों के अभाव'' में छोड़ देगा या छोटी-मोटी सजाएँ उन्हें मिल जायेंगी। पर इतिहास को जो क्षति पहुँची है, उसकी भरपाई तो असंभव ही होगी।

मुंबई के पत्रकार निखिल वागले ने भण्डारकर संस्थान पर हमले के साथ ही जेम्स लेन की किताब पर सरकारी प्रतिबंध की भी निन्दा की है और इसे अलोकतांत्रिक कदम बताया है। उनका यह विचार एकदम उचित ही प्रतीत होता है कि अकादमिक क्षेत्र में मतभेदों पर बहस के बजाय प्रतिबंध की राजनीति और उसकी स्वीकार्यता ख़तरनाक है। आज के हालात में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिन लेखकों और इतिहासकारों ने भण्डारकर संस्थान पर हमले की घटना की भर्त्सना की है, उनमें से भी अधिकांश ने जेम्स लेन की फस्तक पर सरकारी प्रतिबंध की निन्दा नहीं

की है। सवाल चाहे जेम्स लेन की पुस्तक पर महाराष्ट्र सरकार के प्रतिबंध का हो या तसलीमा नसरीन की पुस्तक पर पश्चिम बंगाल सरकार के प्रतिबंध का, पुस्तक-प्रतिबंध की यह राजनीति बुर्जुआ जनवाद के रहे-सहे 'स्पेस' के भी सिकुड़ने का द्योतक है। जेम्स लेन के किसी व्याख्या-विवरण से असहमति स्वाभाविक है और इस बात पर भी बहस हो सकती है कि तसलीमा नसरीन का चौंक-चमत्कार भरा अराजकतावादी मुक्ति-दर्शन किस हद तक बज़ार के तक़ाज़ों के चलते और किस हद तक जन-मुक्ति या स्त्री-मुक्ति के पक्ष में प्रभावी है! बातचीत इस प्रश्न पर भी हो सकती है कि तसलीमा पश्चिमी मीडिया की 'स्टार' क्यों हैं और इराक तथा साम्राज्यवादी विभीषिका के अन्य सामयिक ज्वलन्त प्रश्नों पर वे मुखर व सक्रिय क्यों नहीं होतीं! लेकिन तमाम मतभेदों के बावजूद किसी धार्मिक समुदाय, राष्ट्रीय समुदाय या जाति विशेष की भावनाओं के आहत होने की आड़ में पुस्तक पर प्रतिबंध लगाना सरासर गलत है। जिसे आपत्ति हो, उसे समालोचना और बहस का तो पूरा अधिकार हो सकता है, लेकिन गुण्डागर्दी और प्रतिबंधों की राजनीति का तो सभी जनवादी, प्रगतिशील शक्तियों को जमकर विरोध करना चाहिए। सोचने की बात है कि हिटलर की आत्मकथा और तरह-तरह की विकृत पुस्तकें तो बाजार में बिक सकती हैं, लेकिन अकादमिक एवं साहित्यिक दायरे में ''आहत भावनाओं'' की राजनीति की आड़ में पुस्तकों पर प्रतिबंध लगाया जाता है। यूँ तो धार्मिक पुस्तकों में नास्तिकों के लिए वर्णित दण्डों और अपमानजनक बातों से अनीश्वरवादियों की भावनाएँ भी आहत होती हैं। तो क्या उनकी आहत भावनाओं की खातिर धर्मग्रन्थों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है?

बहरहाल, मूल प्रश्न पर वापस लौटें। भण्डारकर संस्थान के ऐतिहासिक अभिलेखों की तबाही जैसी कोई घटना यदि फ्रांस जैसे यूरोप के किसी पूँजीवादी जनवादी देश में घटी होती तो कम से कम बौद्धिक जगत में तो 'राष्ट्रीय शोक' जैसा माहौल होता, संस्कृतिकर्मी, अकादमीशियन और छात्र सड़कों पर होते और सरकार के इस्तीफे तक की नौबत आ जाती। यह भारत के बौद्धिक मानस पर अंकित औपनिवेशिक अतीत का एक जन्मचिह्न ही है कि भारतीय प्रगतिशील बुद्धिजीवियों तक का इतिहास-बोध काफी कमजोर है। जहाँ तक आम मध्य वर्ग की बात है तो वह इतिहास और मिथकों में कोई फर्क नहीं करता, प्रायः इतिहास का मिथकीकरण करता है और इतिहास को जानने के बजाय इतिहास को पूजने का आदी है। अतीत-पूजा की यह मनोवृत्ति औपनिवेशिक समाज के जनों के पराजित मानस और उन्हें अपने इतिहास से विच्छिन्न कर देने के उपनिवेशवादी कुचक्रों का ही एक प्रतिफल है, जो आज भी प्रतिक्रिया की ताकतों को बल दे रहा है और उनके काम आ रहा है। भण्डारकर संस्थान पर फासिस्ट हमले के बाद अखबारों के सम्पादकीय पृष्ठों पर घटना की निन्दा करते हुए कुछ लेख छपे। सरकार से और शासकीय प्रतिष्ठानों के पीठासीन बुद्धिजीवियों से तो अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी, लेकिन किसी प्रगतिशील या जनवादी लेखक संगठन ने भी इस घटना की निन्दा करते हुए न तो कोई वक्तव्य दिया, न ही प्रतीकात्मक विरोध का भी कोई कार्यक्रम लिया। शायद उनके विचार में यह इतिहास से जुड़ा सवाल है और संस्कृति से इसका कुछ भी लेना-देना नहीं है! देश के गण्यमान्य इतिहासकारों ने इसकी निन्दा करते हुए एक बयान जारी करके अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली और उनका बयान कुछ अखबारों के कोने-अंतरे में कहीं थोड़ी जगह भी पा गया। देश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों के परिसर में जीवन सामान्य रहा। कहीं से भी किसी छोटे-मोटे विरोध-प्रदर्शन तक की खबर नहीं आई। दरअसल हमारे देश के प्रगतिशील बुद्धिजीवी और अकादमीशियन सड़क पर उतरना अपनी ''गरिमा'' के प्रतिकूल मानते हैं (वेतन, सेवा-सुविधा, आदि अपवादों को छोड़कर)। जहाँ तक आम छात्रों की बात है, यह शिक्षा व्यवस्था उन्हें वह इतिहास-बोध देती हीं नहीं कि वे इस घटना के ऐतिहासिक विनाशकारी प्रभाव को समझ सकें। जो वामपंथी छात्र संगठन हैं, उनकी समाज-विकास की गतिकी की समझ भी इतनी ही उथली है कि वे इस घटना को किसी तरह के प्रचार या आन्दोलन की कार्रवाई का मसला नहीं मानते।

भण्डारकर इंस्टीट्यूट-ध्वंस काण्ड ने इस देश के परिवर्तनकामी जनों को आईना दिखाने का काम किया है और हमें यह अहसास भी दिलाया है कि हमारे सामने खड़ी चुनौतियाँ कितनी विकट हैं तथा उनके बरक़्स हमारी बौद्धिक-भौतिक तैयार कितनी कम और कितनी अस्त-व्यस्त है। निश्चय ही, क्रान्तिकारी परिवर्तन की लहर जब तक तूफ़ान की शक्ल नहीं लेगी, जब तक क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी बनी रहेगी, तबतक फासिस्ट इस तरह के भयंकर काण्ड करते रहेंगे, जिसकी कीमत आने वाली पीढ़ियाँ तक चुकायेंगी। इतिहासद्रोही शक्तियाँ इतिहास का ध्वंस करके भविष्य-निर्माण की वाहक शक्तियों पर चोट कर रही हैं और तरह-तरह से कर रहीं हैं।

भण्डारकर इंस्टीट्यूट की तबाही इस देश के जनपक्षधर बुद्धिजीवी के सामने न सिर्फ दर्पण रख रही है, बल्कि एक विकट यक्षप्रश्न उपस्थित कर रही है। यह वही प्रश्न है जो **मुक्तिबोध** की प्रसिद्ध कविता *'उस दिन'* का विचित्र पात्र *'उपेक्षित काल पीड़ित सत्य'* उन बुद्धिजीवियों से पूछता है जो 'जनगुण' से रिक्त है और जो 'ज़िन्दगी की धमन भट्ठी में परीक्षित होकर इस्पात, नहीं बने हैं :

सुना तुमने!!
धधकती जा रही है ग्रन्थशाला भी
हमारे पर्सिपोलिस की!!
कहाँ फ्रामरोज़ (पण्डितराज)
केटायून (कवयित्री)
कहाँ बहराम (सम्पादक)
कहाँ रुस्तम
उन्होंने सिर्फ़ नालिश की
अरे रे, सिर्फ़ नालिश की
अँधेरी उस अदालत में
जहाँ मुंशी व मुंसिफ़ पी रहे थे
लुटेरे के अर्दली के साथ
रम, शैम्पेन, व्हिस्की–जब
उड़ेले जा रहे थे खूब कैरोसीन के पीपे
लगायी जा रही थी सींक माचिस की
कहाँ थे वे
कहाँ थे तुम

कि जब दस मंज़िलों, दस गुम्बदों वाली
सुलगती जा रही थी लायब्रेरी पर्सिपोलिस की
हमारे गहन जीवन-ज्ञान
मानव-मूल्य के उस एक्रोपोलिस की!!
क्षितिज पर पोत डामर जब,
गुलाबों, सूर्यमुखियों, पारिजातों पर
छिड़ककर स्याह गाढ़ा कोलतारी द्रव
हमीं में से विदेशी सा
हमारे बीच का ही एक
नवसाम्राज्यवादी...
क्रोध के आवेश में आकर
उजाड़े जा रहा है जिन्दगी की बस्तियाँ
पददलित मानव-मूल्य
हैं आक्रान्त आत्माएँ
तुम्हें क्या चाहिए
पिस्तौल या वायलिन!!

'आह्वान' यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाज़ार, **गोरखपुर** ■विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, डी-68, निरालानगर, **लखनऊ**-226020 ■राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ■ विमल कुमार, बुक स्टाल, नीलगिरी काम्प्लेक्स के सामने, ईंदिरानगर, **लखनऊ** ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी,** ■शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** ■ डी.के.सचान, एस.एच.-272, शास्त्रीनगर, **गाज़ियाबाद,** ■ अरुण कुमार चौबे, सर्वोदय बुक स्टाल प्लेटफार्म नं.-5 रेलवे स्टेशन **वाराणसी, कैण्ट वाराणसी,** ■ कृष्ण कुमार श्रीवास्तव, पुत्र श्रीशिवाशंकर श्रीवास्तव ग्राम व पोस्ट मधुकरपुर, जिला **रायबरेली,** ■ राहुल पुस्तक सेन्टर, निकट विजय श्री, खरौली कोठी स्टेशन रोड, **बलिया,** ■ जनचेतना, 989, पुराना कटरा, यूनीवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, **इलाहाबाद,** ■सवद, 171, कर्नलगंज (स्वराज भवन के सामने) **इलाहाबाद**
■ सत्यम वर्मा, 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जी.एच.-2, सेक्टर-11, वसंधरा, गाज़ियाबाद
उत्तरांचल ■ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास-विकास, **रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)** ■ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, **पन्तनगर (ऊधमसिंहनगर)** ■ अविनाश श्रीवास्तव, 87, पन्त भवन, **पन्त नगर विश्वविद्यालय, (ऊधमसिंहनगर)** ■ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)** ■ प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, **पन्तनगर,** ■ अभिनव सिन्हा, रूम नं.-33, रामजस हास्टल **दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली** ■ **जनचेतना, चलता फिरता पुस्तक केन्द्र, चौड़ा मोड़, नोएडा (सायं 5 से 8 बजे तक)** ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस** ■ पत्रिका मंडप, कला संकाय, **दिल्ली विश्वविद्यालय** ■ नई किरण पुस्तक भण्डार, 56, हरकेश नगर, **ओखला, दिल्ली**
हरियाणा ■ नरभिंदर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, **हरियाणा,** ग्रा./पो.-संतनगर, जिला-**सिरसा,** पंकज, प्लाट नं.-33, सेक्टर 15, सोनीपत
पंजाब ■ राणा बुक स्टोर, निकट पी.यू.डी.ए. आफिस भागू रोड **भटिण्डा,**
बिहार ■समकालीन प्रकाशन (प्रा.लि.), पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, ■ रामनरायण राय, द्वारा राघव पटेल, कपड़े की दुकान साहेबगंज पोस्ट करनौल, जिला **मुजफ्फरपुर,। बंगाल** ■जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ सी.पी. सरोज, सनराइज स्कूल, छोटा अदलपुर, सेमलबाड़ी, **दार्जलिंग** ■राकेश गोरखा, पाथिभरा पुस्तक पसल, प्रधान नगर, **सिलीगुड़ी,** ■ मनोज गिरि, द्वारा लोकनाथ निराला, निकटआचार्य क्लब, नया बाजार **कर्सियांग-दार्जिलिंग। मध्य प्रदेश** ■विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22 स्वास्तिक काम्पलेक्स, रसेल चौक, जबलपुर, ■ जैनसन बुक शॉप एण्ड स्टेशनर्स, 33 वक्षी गली, वीरसावरकर मार्केट **राजवाड़ा इन्दौर। महाराष्ट्र** ■पीपुल्स बुक हाउस, 15 कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई,** ■ वसुन्धरा, 602, गेटवे प्लाजा, हीरानन्दानी गार्डेन, पवई, **मुम्बई। राजस्थान** ■कविता, 4/2, (ग्राउण्ड फ्लोर), जवाहर नगर, **जयपुर** ■ बुक्स एण्ड न्यूज मार्ट, एम.आई.रोड, **जयपुर। असम** ■शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया। नेपाल** ■विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, बुटवल, **रुपनदेई**

घोषणा पत्र: प्रपत्र-1

पत्रिका का नाम	- आह्वान कैम्पस टाइम्स
आवर्तिता	- त्रैमासिक
भाषा	- हिन्दी
प्रकाशन स्थान	- गोरखपुर
प्रकाशक/स्वामी का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' - कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रक का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' - कल्याणपुर, गोरखपुर
सम्पादक का नाम	- अभिनव
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' - कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रणालय का नाम	- आफसेट प्रेस इलाहीबाग, गोरखपुर

मैं आदेश सिंह, यह घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आदेश सिंह
(प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी)